Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

28

आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक समस्याएँ

डॉ. प्रमिला
सह आचार्य हिंदी विभाग
लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. सुमित कुमार मीना
सहायक आचार्य हिंदी विभाग
लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सारांश :- प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी पृथक-पृथक समस्याएँ होती हैं। आदिवासी समाज की भी अपनी समस्याएँ हैं। कुछ उनकी परंपरागत समस्याएँ हैं तो कुछ औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं विकास के नाम पर उपजी हैं। समकालीन आदिवासी लेखकों यथा हरिराम मीणा, मंगल सिंह मुण्डा, वाल्टर भेंगरा, पीटर पौल एक्का ने आदिवासी समाज की समस्याओं को अनुभूत किया और अपने साहित्य में पूर्ण निष्ठा के साथ रेखांकित किया है। आदिवासी जीवन में स्वाधीनता के बाद भी आवश्यक विकासात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। अर्थात् आज़ादी के लगभग सतर साल गुजर जाने के बाद भी आदिवासी जीवन में सामाजिक समस्याएँ ज्यों की त्यों है। आदिवासी समाज की जीवन-शैली प्रकृति के साथ सहअस्तित्व पर आधारित है। उनकी सांस्कृतिक परंपराएँ, सामुदायिक संबंध और लोक-ज्ञान उन्हें विशिष्ट बनाते हैं। किंतु आधुनिक विकास की प्रक्रियाओं ने इस संतुलन को बाधित किया है।

बीज शब्द :- आदिवासी, समाज, संस्कृति, समस्याएँ, औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण

आलोचकों ने साहित्य को समाज का दर्पण कहा है। इस कथन का मूल उद्देश्य कदाचित यह बताना रहा है कि रचनाकार समाज में जो कुछ भी शुभ-अशुभ, सार्थक-असार्थक देखता है उसी का वर्णन अपनी रचना में करता है। प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी पृथक-पृथक समस्याएँ होती हैं। आदिवासी समाज की भी अपनी समस्याएँ हैं। कुछ उनकी परंपरागत समस्याएँ हैं तो कुछ औद्योगिकीकरण, वैश्वीकरण, उदारीकरण एवं विकास के नाम पर उपजी हैं। आदिवासी समाज अज्ञान, पिछड़ेपन, प्राथमिक सुविधाओं के अभाव, अंधविश्वास एवं अन्यान्य समस्याओं से जुड़ा हुआ है। समकालीन आदिवासी लेखकों ने अपने कथा-साहित्य के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि आदिवासी जीवन में स्वाधीनता के बाद भी आवश्यक विकासात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। अर्थात् आज़ादी के लगभग सतर साल गुजर जाने के बाद भी आदिवासी जीवन में सामाजिक समस्याएँ ज्यों की त्यों है। आदिवासी लेखकों ने अपने समाज की समस्याओं को अनुभूत किया और अपने साहित्य में पूर्ण निष्ठा के साथ लिखा। रमणिका गुप्ता के अनुसार, "दरअसल आदिवासी चेतना का लेखन जहां एक तरफ अपनी पीड़ा खुद कहने, अपने समाधान खुद ढूँढ़ने की चेष्टा है, वहीं आज वह प्रस्थापितों द्वारा अपनी संस्कृति नष्ट करने, अपने संसाधनों पर कब्जा जमाने के षडयंत्रों के बरक्स प्रतिरोध की चेतना से भी लैस है।"[1] इस प्रकार आदिवासी साहित्य सहानुभूति का साहित्य नहीं अपितु स्वानुभूति का साहित्य है जिसमें समाज की समस्याएँ उकेरी गयी हैं।

भारतीय समाज और संस्कृति का निर्माण कई धाराओं के मिलने से हुआ है। जिसमें आदिवासी संस्कृति भी है और नगरीय संस्कृति भी तथा ऐसी संस्कृतियां भी जो स्वयं को प्रतिपक्षी मानती है। भारत विविधाताओ से युक्त देश है। यहाँ अनेक धर्म, जातियां, भाषाएं, बोलियां, अपनी विविध संस्कृति के उपरांत भी उपस्थिति दर्ज करवाती हैं। भारतीय आदिवासी जनजीवन जहाँ एक ओर अपनी विशिष्टता दर्शाता है वहीं दूसरी ओर अपने विश्वास, संस्कार और लोकमान्यताओं से भी हमें परिचित करवाता है।

आदिवासी समाज की प्रमुख समस्याओं में अशिक्षा, बेरोजगारी, गरीबी, विस्थापन, पारिवारिक कलह, पुलिस एवं राज्य की अन्य संस्थाओं द्वारा आदिवासी समाज पर किये जाने वाले अत्याचार, बाजारीकरण और उपभोक्तावाद, आदिवासी स्त्री की विभिन्न समस्याएँ और सामाजिक स्वीकार्यता एवं अस्मितमा का संघर्ष, अंधविश्वास है। आदिवासियों की सामाजिक समस्याएँ आज के दौर में त्रासद हो गई है।

अशिक्षा

अशिक्षा किसी भी समाज के लिए अभिशाप है। सभी समस्याओं का मूल अशिक्षा ही है। अंधविश्वास, बेरोजगारी, शोषण आदि समस्याओं का सीधा संबंध अशिक्षा से ही है। आज़ादी के सत्तर वर्षों के उपरांत भी संपूर्ण भारत शत प्रतिशत साक्षर नहीं हो पाया है। जब समाज की मुख्यधारा के लोग ही पूर्णत: साक्षर नहीं हो पाये तो आदिवासियों की बात करना तो बेमानी है। यद्यपि आदिवासियों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए सरकारी योजनाएं तो बहुत बनी लेकिन उनकी अपनी मातृ भाषा में आरम्भिक शिक्षा देने को कभी जरूरी नहीं माना गया। यहाँ यह उल्लेखित करना अनिवार्य है कि आदिवासी सदैव जंगलों में ही रहे हैं इस कारण समाज की मुख्यधारा से उनका कोई विशेष संबंध नहीं रहा है इस कारण वे उस भाषा को समझने में भी सर्वदा असक्षम हैं, जिस भाषा को समाज का बहुसंख्यक वर्ग जानता है। अत: यह आवश्यक है कि आदिवासियों को उसी भाषा में शिक्षा दी जानी चाहिए जिसे वे समझते हैं।

आदिवासियों की इस मूलभूत आवश्यकता को आदिवासी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में रेखांकित किया है। आलोचकों का मानना है कि उनके इतिहास को भी इसी अशिक्षा के कारण कभी उजागर नहीं किया गया। परन्तु हरिराम मीणा ने अपनी औपन्यासिक कृति 'धूणी तपे तीर' में आदिवासी इतिहास पुरूष गोविंद गुरू को सामने लाकर शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया है। "पढ़ाई लिखाई के महत्व को समझो। मैं स्कूल में नहीं पढ़ा, लेकिन इधर-उधर से आखर ज्ञान सीख लिया। तुम भी सीखों। बच्चों को पढ़ाओं। तभी वे समझदार बनेंगे।

©Copyright 2025 ADRJ. All Rights Reserved

Akshardhara Research Journal
Single Blind Peer-Reviewed & Refereed International Research Journal
E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

गांव-गांव में जो भी थोड़ा पढ़ा-लिखा हो उसका धर्म है कि अन्य लोगों को पढ़ायें। पढ़ाई घर के वातावरण से होती है इसलिए बड़े आदमी भी शिक्षा प्राप्त करें। राजा, जागीरदार, हाकिम की बेगार मत करो। इनमें से किसी का भी अन्याय मत सहो।"[2] इस प्रकार 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में एक ऐतिहासिक चरित्र को केन्द्र में रखकर आदिवासियों को शिक्षा के महत्व को उद्घाटित किया गया है। रचनाकार ने अपने पात्र के माध्यम से समाज में शिक्षा के महत्व को रेखांकित करते हुए इसके महत्व को इंगित किया है साथ ही समाज के लोगों को भी दायित्वबोध से अवगत करवाया है कि समाज का प्रत्येक पढ़ा-लिखा व्यक्ति अन्य लोगों में शिक्षा की जोत जगाए।

अशिक्षा से उपजी समस्याओं को अप्रत्यक्ष रूप से मंगल सिंह मुण्डा ने मुण्डा समाज में भी देखा और अपने उपन्यास 'छैला सन्दु' में इसके दुष्परिणामों से अवगत करवाते हुए शिक्षा पर बल दिया है। वस्तुतः उपन्यासकार का यहाँ शिक्षा से आशय हुनर से है। गांव के सूबेदार हाकिम सिंह अपने बच्चों को संगीत की शिक्षा दे रहा था, वहीं सन्दु वहां अपना सामान बेचने आता है तो संगीतज्ञ गुरू उसके हुनर को पहचान लेते हैं, लेकिन घृणावश उसे स्वीकारना नहीं चाहते। "आह! यह होनहार, तेजस्वी बच्चा कैसा गरीबी में पिस रहा है ?' वे सहसा बड़बड़ाने लगते हैं। रचनाकार का मानना है कि व्यक्ति में हुनर होना चाहिए वह उसके बल पर अपना पेट भर सकता है। 'हूं, यह नंगा फकीर बच्चा होनहार और तेजस्वी? कौन है यह?' भगवानदास का मन एकाएक घृणा तथा उत्सुकता से भर उठता है।' 'गुरूदेव, यह कोई साधारण बच्चा नहीं है। शरीर से भले यह भूखा-नंगा है। पर व्यक्तित्व का महान धनी है। हमसे भी धनी।' इसके व्यक्तित्व में एक विलक्षण गुण मौजूद है। किसी भी गुण को सहजता से ग्रहण करने की अदभुत क्षमता है इसमें।"[3] उपर्युक्त उद्धरण से यह बात स्पष्ट है ज्ञान चाहे किसी चीज़ का हो, आदमी के व्यक्तित्व को निखारता है। यहाँ रचनाकार अप्रत्यक्ष रूप से यह बताना चाहते हैं कि तथाकथित उच्च वर्ग आदिवासी समाज का मान-सम्मान शिक्षा या हुनर के बल पर ही करता है। अत:शिक्षा प्रत्येक समाज के लिए अनिवार्य है।

वाल्टर भेंगरा 'तरूण' के उपन्यास 'लौटते हुए' का ताना-बाना यूं तो गरीबी और पलायन की समस्या को लेकर लिखा गया उपन्यास है, लेकिन कैथोलिक धर्म की सलोमी ने छोटा नागपुर की स्थितियों को भी रेखांकित किया हैं। सलोमी बचपन में ही शिक्षा के महत्व को समझ गई थी। उसकी माँ पौलिना शिक्षा लेना चाहती थी लेकिन गरीबी और पारिवारिक जिम्मेदारियों के चलते वह पढ़ नहीं पायी, लेकिन वह अपनी बेटी को पढ़ाना चाहती है। साथ ही उपन्यास में यह भी दर्शाया गया है कि स्कूल में पढ़ना कितना मुश्किल काम है, क्योंकि स्कूल गांव से बहुत दूर होते थे। "आज अपनी बेटी को स्कूल में दाखिले के लिए भेजते समय वह आत्म संतोष का अनुभव कर रही थी। वह मन ही मन प्रभु येसु से विनती भी कर रही थी कि उसकी बेटी सलोमी को स्कूल में आसानी से दाखिला मिल जाए।.....पतरस जब स्कूल के पास सलोमी को लेकर पहुंचा तो देखा आस-पास के गांवों के अनेक माता-पिता अपने बच्चों के साथ वहां पहले उपस्थित थे।....'जय येसु, मरकुस!' अभिवादन का जवाब देते हुए पतरस ने भी कहा। 'हाँ, बच्चों को पढ़ाने की जिम्मेदारी तो हमारी ही है। हम किसी तरह कुछ दूर तक पढ़े। पढ़े कहां बस लिखना-पढ़ना भर ही तो सीख पाये हम। अब बच्चों की बारी है कि वे पढ़ें।"[4] रचनाकार नेअपने पात्र पतरस के माध्यम से अपने उद्देश्य को इंगित करते हुए यह सिद्ध कर दिया कि बच्चों की शिक्षा से बढ़कर कुछ भी नहीं है। शिक्षा ही वह मूल मंत्र है जिसके द्वारा व्यक्ति इस समाज में अपना सर ऊँचा करके जीवन यापन कर सकता है। लेखक यह भी बताना चाहता है कि शिक्षा प्राप्ति के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं और उनमें सबसे भयावह है अर्थ की समस्या परंतु इन सबको दर किनार करते हुए व्यक्ति को अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होते रहना चाहिए। इसी उपन्यास में वह आगे वर्ण करते हुए बताता है कि आगे सलोमी के घर की आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती जाती है। जहां सबसे पहले उसका स्कूल छूट जाता है। "चाहती तो थी बहुत पढ़ना वह। लेकिन परिवार की हालत अब पहले जैसी नहीं रही। उसके परिवार में अब कुल पांच सदस्य हो गये थे। पतरस हाड़-तोड़ मेहनत के बावजूद अब पहले की तरह अपने बच्चों की जरूरतों को पूरा नहीं कर पा रहा था। वर्ष बीतते सलोमी के साथ पौलुस भी स्कूल जाने लगा था। सिसिलिया भी स्कूल जाने के लिए जिद्द करने लगी थी। वह भी ढ़ाई वर्ष की हो चुकी थी। इधर घर में एक और नये मेहमान का आगमन हो रहा था। जब सलोमी दसवीं क्लास में आयी तो उसकी एक और बहन हुई – बेरनादेत। अब उसकी दो छोटी बहनें और एक छोटना भाई मिलकर घर में सीमित आय के हिस्सेदार बन गये थे।"[5] उपन्यासकार ने उक्त पात्रों के माध्यम से यह संदेश देने का प्रयास किया है कि 'अर्थ' जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बिना अर्थ के जीवन नरक सदृश्य है। यद्यपि अर्थ सबकुछ नहीं होता परंतु बहुत कुछ अवश्य होता है। सलोनी की शिक्षा में अर्थ सबसे बड़ी बाधा बनकर सामने आता है और पतरस की हाड़तोड़ मेहनत के उपरांत भी वह पढ़ नहीं पाती है।

पीटर पौल एक्का के उपन्यास 'पलास के फूल' में विकास के नाम पर विस्थापन की समस्या को केन्द्र में रखा गया है। लेकिन गरीबी, अशिक्षा, भूखमरी, सभी एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं, "उस दिन सुनील ऐसे ही गांव की ओर निकल गया था। हर तरफ एक अजीब बर्बादी, तबाही का समां दिख जाता था। वहां एक घर के सामने दो नंग-धड़ंग बच्चे खेल रहे थे- धूल, गर्द में, लिपटे सारे जहां से बेखबर। सुनील कुछ दूर खड़ा उन्हें देखने लगा था। तब दूसरे घर से एक नन्ही-सी बच्ची बाहर निकली। हाथों में मड़ुवे की रोटी थी। जैसे ही दोनों बच्चों ने देखा खेल छोड़कर भागे-बच्ची के नन्हें हाथों से रोटी छीन ली और भाग चले। बच्ची जोर-जोर से रोने लगी। घर से बच्ची की मां निकली और अपनी ही भाषा में धाराप्रवाह गाली उगलने लगी थी। फिर बच्ची को चुप कराती अंदर चली गयी।"[6] यहां रचनाकार उक्त दोनों अबोध बालकों के माध्यम से यह बताया है कि यदि उन्हें शिक्षा मिली होती तो वे इस तरह गंदे, मैले, कुचिले नहीं रहते साथ ही वे रोटी छीन कर नहीं भागते। साथ ही उक्त महिला के धाराप्रवाह अपनी ही भाषा में गाली निकालना भी उसकी अशिक्षित होने के प्रमाण को ही इंगित करते है। रचनाकार का मानना है कि

©Copyright 2025 ADRJ. All Rights Reserved

E ISSN -3048-8095 / Bimonthly / SJIF Impact- 5.16/ March - April 2026 / VOL-02 ISSUE-V

शिक्षा के अभाव से अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार आदिवासी रचनाकारों ने अपने उपन्यासों में आदिवासियों की मूल समस्या शिक्षा को अपनी रचनाओं में उकेरा है तथा समाज के सामने इस बात को सशक्त रूप से उठाया है कि शिक्षा के अभाव में किसी भी समाज का विकास संभव नहीं है। अशिक्षा के कारण ही संदू का विवाह बूंदी के साथ नहीं हो पाता है क्योंकि अविद्या के आवरण के कारण हम भेद बुद्धि में फंस जाते हैं जिसके परिणाम स्वरुप जातिवाद, धर्मवाद, कबीलावाद, सम्प्रदायवाद जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इस अविद्या के कारण ही बाल विवाह, अनमेल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा तथा अन्य सड़ी-गली मान्यताओं को जन्म मिलता है तथा अंधविश्वास इस की कोंख से उत्पन्न होता है।

गरीबी

आदिवासी समाज गरीबी और भुखमरी के कारण भूमि का हस्तांतरण करता है एवं जिसके परिणाम स्वरुप पलायन जैसी समस्या उत्पन्न होती है। आदिवासियों के जीविकोपार्जन का आधार कृषि है। बहुसंख्यक आदिवासी समाज खेती से जुड़ा हुआ है। इनका जीवन खेती पर ही निर्भर है। बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण भूमि की मांग निरंतर बढ़ रही है। आदिवासी अपनी निर्धनता के कारण भूमि का हस्तांतरण मजबूरी में करते हैं। ‘पलाश के फूल’ उपन्यास में लोग ग़रीबी के कारण ही गांव छोड़कर जाने लगते हैं, उपन्यास की केन्द्रीय पात्र सलोमी कहती है, “लोग मजदूरी रोजी रोटी की तलाश में गांव छोड़कर जा रहे हैं। अकाल का डर है। उधर से कोई चालान करने वाला आया है। कहता है चाय बगान, ईंट की भट्ठों में रोजी-रोटी का ठिकाना लगा देगा। बाबूजी ने निश्चय कर लिया है जाने का। कल गांव छोड़ देंगे।”[7] सलोनी के उक्त कथन में ग़रीबी की पीड़ा उजागर हो रही है। उसे न चाहते हुए भी अपना घर-गाँव छोड़कर जाना पड़ रहा है। गरीब का कोई मान -सम्मान नहीं होता। इसीलिए लोग कहते हैं भगवान दुनियां में किसी को भी ग़रीब न बनाए।

‘लौटते हुए’ उपन्यास में भी गरीबी से तंग होकर तेजी से बढ़ते पलायन की समस्या को कथावस्तु का आधार बनाया गया है। पलायन की समस्या के मूल में गरीबी है। “मुझे भी गांव की गरीबी काटती है। जब आबा को दिनभर खटने के बाद भी इतना नहीं हो पाता कि अपने बच्चों को पूरा भरपेट खिला सके, तो उसकी मजबूरी पर तरस आता है। तब वे दारू पीकर इस दुःख को छिपाने की कोशिश करते हैं तो रोना ही आ जाता है मुझे। ....अब गांव की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। दिन ब दिन गांव की हालत बदतर होती जा रही है। गरीबी और भुखमरी के कारण हरेक परिवार की स्थिति दयनीय होती जा रही थी।”[8] उक्त उपन्यास में भी आदिवासियों के पलायन के मूल में ग़रीबी ही है। उक्त कथन में एक और समस्या की ओर इशारा किया गया है, वह है-नशा खोरी। यह नशा खोरी भी ग़रीबी के कारण ही उपजती है।

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदिवासी रचनाकरों ने अपने लेखन में सामाजिक समस्याओं को बहुत ही शिद्दत के साथ उठाया है।

कर्जा और नशाखोरी

आदिवासियों की सामाजिक समस्या में कर्ज और नशाखोरी भी निहित है। कर्ज और नशाखोरी के मूल में गरीबी ही है। कर्जे का जहां आर्थिक पक्ष से संबंध है, वहां सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष से भी संबंध है। आदिवासियों के कर्जदार होने के कई कारण है। जिनमें भूमि और वनों पर जनजातीय अधिकारों का हनन, दकियानूसी कृषि पद्धति के कारण कम उत्पादन, बेगारी आदि प्रमुख हैं। प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास गोदान में कहा है कि कर्ज वह मेहमान है जो एकबार आ जाता है तो जाने का नाम नहीं लेता है। आदिवासी भी अपनी परपराओं के निर्वहन एवं उदर पूर्ति हेतु कर्ज पर ही आश्रित होते हैं और कम उत्पादन के कारण कर्ज रूपी गड्ढे को भर नहीं पाते हैं। इस प्रकार कर्ज जोंक के समान चिपका रहता है। ‘पलास के फूल’ उपन्यास में कर्जदार होने से आदिवासी की बिगड़ती और अत्याचार को रखते हुए स्थिति को दिखाया गया है। ‘‘कब का कर्जा, कब का पैसा साब। - वह पहाड़ी मेरे करीब आ गया है। - ऋण क्या लिया जिनगी बिक गया साब। सौ रूपयों लिया था साब, अब तक चुकता नहीं हुआ। अब तीन महीने से अपना जवान लड़का-लड़की साहूजी का काम करता। फिर भी कर्जा नहीं भरता। यह तो जैसे जन्म भर का गुलाम हो गया गुलाम।”[9]

नशा वह सामाजिक बुराई है जो आदमी को तो खाता ही है, परिवार को भी खा जाता है। नशे के सेवन के कारण ही व्यक्ति अमर्यादित आचरण करता है तथा समाज और परिवार में अपनी साख खो देता है। आदिवासियों में भी नशे का सेवन एक गंभीर सामाजिक समस्या है। ‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास में नशाखोरी की समस्या को दूर करने का प्रयास गोविन्द गुरू करते हैं, “गोविंदा देर रात सोचता रहा कि बुरिया जैसे होनहार युवक का बाप बुरा आदमी नहीं है, लेकिन दारू की लत ने उसे बेकार बना दिया। गोविंदा के मन में यह बात अच्छी तरह बैठती जा रही थी कि किसी भी प्रकार का नशा आदमी के शरीर और व्यवहार को बिगाड़ देता है। जवानी की देहरी पर कदम रखने तक गोविंदा ने कई ऐसे वाकिये देखे और सुने थे जब कोई आदिवासी ख़ुशी में, कोई गमी में, कोई भौतिक अभावों के दुःख को भुलाने की गफलत में व कोई राज का सताया गुस्से में दारू पीने की आदत बना चुका था और अंत में घर-परिवार की बर्बादी का कारण बनता था। उस रात गोविंदा ने संकल्प किया कि आदिवासी समाज में व्याप्त बुराइयों और नासमझदारियों के खिलाफ वह चेतना पैदा करने का काम करेगा।”[10] उक्त कथन के माध्यम से रचनाकार ने अपना मंतव्य स्पष्ट कर दिया कि आदिवासियों के पिछड़ेपन का एक मूल कारण नशाखोरी भी है साथ ही रचनाकार ने अपनी रचनाधर्मिता का परिचय देते हुए यह भी उल्लेख कर दिया है कि समाज में नशाखोरी को समाप्त करने में शिक्षित वर्ग अपनी महती भूमिका निभा सकता है तथा नशे के विरुद्ध एक अभियान चलाकर इसे समाप्त किया जा सकता है

©Copyright 2025 ADRJ. All Rights Reserved

नशा परिवार एवं समाज में बिखराव लाता है। इस प्रकार गरीबी एवं शोषण के साथ नशाखोरी ने आदिवासियों के परिवार को टूट के कगार ला खड़ा किया है। 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में रचनाकार ने इसे अभिव्यक्त किया है “अपने दोस्तों के बीच बैठकर दारू पीने की फुर्सत तो तुम्हें है लेकिन अपने बच्चों के साथ दो पल बैठने का समय नहीं। मैं मना नहीं करती कि तुम दारू मत पीयो। लेकिन यह तो रोज-रोज की बात होती जा रही है। अगर मैं भी तुम्हारी तरह अपनी सहेलियों के पास हर रोज चली जाऊं और बच्चों को अपने हाल पर छोड़ दूँ तो घर-परिवार का क्या हाल होगा, तुम बताओ तो सही।”[11]

शासन सत्ता द्वारा आदिवासियों का शोषण

आदिवासी लेखकों ने आदिवासी समाज के शोषण एवं उनके कारणों का यथार्थ चित्रण किया है। आदिवासियों की केवल सामाजिक समस्याएँ ही नहीं है अपितु शासन सत्ता एवं सरकारी तंत्र द्वारा भी इन लोगों का शोषण होता रहा है। रचनाकारों ने इन समस्याओं को भी अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। पुलिस, साहूकार, सामंत सब अपने अपने ढंग से इनका शोषण करने लगे रहते हैं। ‘धूणी तपे तीर’ उपन्यास में उपन्यासकार ने इस शोषण के कारणों की बहुत गहराई से पड़ताल करते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। ‘‘थूर के शरीर में चुभी हुई अदीरू फांस बड़ी मुश्किल से पुष्प की शक्ल लेकर फूटती है। आदिवासी ठान में राज की गैल ऐसी ही फांस थी। आदिवासी समाज के माथे पर उकेरी वह गैल शोषण का प्रतीक थी जिसके वास्तविक अर्थ को वह समाज अब समझने लगा था। आदिम जगत की परंपरागत स्वायत्तता में लगायी जाती रही रियासती सेंध अब खुला हस्तक्षेप बन कर सामने आ रही थी जिसका प्रतिरोध करने के लिए चेतना अंकुर उस समाज के चित-पटल पर फूटने लगी। ...अभिनव का निर्माण सदैव सृजनात्मकताओं के पक्ष में लाभकारी रहता आया है। असम्बद्ध के लिए तो वह दुःखद हस्तक्षेप ही सिद्ध हुआ। सुदूरगामी नहीं तो इस दुःखद के तात्कालिक तोड़ की अनिवार्यता को आदिवासी जन महसूस करने गये थे।’’[12]

‘पलास के फूल’ उपन्यास में आदिवासी के शोषण को मार्मिक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है- ‘‘क्या करें आनंद बाबू, हम आदिवासियों का इतना ही भाग्य है। जमींदा, सेठ, साहूकार, शहरी बाबू सभी तो तंग करते हैं हमें। जीने कौन देता है?’’[13] निस्संदेह न केवल आदिवासी समाज पर अपितु ग़रीब आदमी को जमींदार, साहूकार सबके सब निचोड़ने पर लगे रहते हैं। ग़रीब के जीवन पर सबका अधिकार होता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो गरीब सबका नरम निवाला है। वह सबकी ओर देखता है परंतु कोई भी उसकी ओर नहीं देखता है। यहाँ आकर वह पंक्ति चरितार्थ हो जाती है - दिनन सबहीं लखे, दिनन लखे न कोय। ठीक इसी प्रकार आदिवासी समाज को सब लोग अपना नरम चारा समझकर उसका शोषण करते रहते हैं।

आदिवासियों की सामाजिक समस्याएँ वर्तमान दौर में गहरी होती जा रही हैं। तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा उसे प्रथाओं और परंपराओं से अलग करने की कोशिश की जा रही है। आदिवासियों की सामाजिक समस्याओं की जड़ में बाल विवाह, बहुविवाह, अनमेल विवाह, विधवा समस्या, विस्थापन, पलायन, गरीबी, शोषण, अशिक्षा, नशाखोरी आदि प्रमुख रूप से निहित हैं।

अत: निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आदिवासी जीवन पर आधारित उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का गहन और यथार्थ चित्रण मिलता है। अशिक्षा, गरीबी, नशाखोरी, कर्ज, शोषण और विस्थापन जैसी समस्याएँ आज भी उनके विकास में बाधा बनी हुई हैं। समकालीन आदिवासी लेखकों ने अपनी रचना धर्मिता का परिचय देते हुए आदिवासी समाज की सामाजिक समस्याओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया है।

पाद टिप्पणियां

1. आदिवासीः साहित्य यात्रा, सं. रमणिका गुप्ता, संपादकीय, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2008
2. धूणी तपे तीर, हरिराम मीणा, पृ.70
3. छैला सन्दु, मंगल सिंह मुण्डा, पृ. 34
4. लौटते हुए, वाल्टर भेंगरा, पृ. 142-143
5. लौटते हुए, वाल्टर भेंगरा,पृ. 162
6. पलास के फूल, पीटर पौल एक्का, पृ. 131
7. पलास के फूल, पीटर पौल एक्का, पृ. 57
8. लौटते हुए, वाल्टर भेंगरा, पृ. 192
9. पलास के फूल, पीटर पौल, पृ. 30
10. धूणी तपे तीर, हरिराम मीणा, पृ. 30
11. लौटते हुए, वाल्टर भेंगरा, पृ.181
12. धूणी तपे तीर, हरिराम मीणा, पृ. 50
13. पलास के फूल, पीटर पौल, पृ.58